अप्रकाशन योग्य

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी अपील संख्या 11040/2013

शैफुद्दीन (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधिगण .....अपीलार्थी

बनाम

कन्हैयालाल (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य .....प्रतिवादीगण

निर्णय

संजय करोल, जे.

1. इस अपील के माध्यम से मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दीवानी पुनर्रिक्षण संख्या 715/2002 में पारित निर्णय दिनांक 04.01.2006 को अपीलार्थीगण द्वारा चुनौती दी गई है । इस आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि निष्पादन आवेदन आज्ञप्ति की दिनांक से 12 वर्ष पश्चात् दायर किया गया था और इसलिए यह कालावधि बाधित था फलस्वरूप यह प्रार्थना कि गई है कि पुनर्रिक्षण न्यायालय द्वारा पुनर्रिक्षण याचिका को खारिज किया जाना न्यायहित में नहीं था।

2. हमारे समक्ष इस अपील में यह प्रश्न उठता है कि क्या दिवानी प्रथम अपील कमांक 11/1959 में जिस दिनांक को समझौता आज्ञप्ति दिअस्वीकरण–स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक एवं कार्यालयीन प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा एवं निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ क्षेत्र धारित करेगा।नांक 26.04.1960 को प्रवेश हुए था उस दिनांक यानि 31.03.1994 जब दीवानी न्यायालय द्वारा वाद कमांक 30/87 में अंतिम आज्ञप्ति पारित की, को निष्पादन कार्यवाहियां संस्थित करने के लिए परिसीमा अधिनियम 1963 (एत्स्मिन पश्चात् 'अधिनियम'') के अंतर्गत परिसीमा स्थापित करने के लिए समझा जायेगा ?

3. जैसे कि अधिनियम के अनुच्छेद 136 में किसी आज्ञप्ति के निष्पादन में परिसीमा अवधि को शासित करने वाले विधायी उपबंध पर चर्चा करना अनिवार्य है । उक्त अनुच्छेद एक विशेष है जो यह विहित करता है और आज्ञप्तियों और आदेशों के निष्पादन के लिए आवेदनों को शासित करता है । यह उपबंधित करता है कि निष्पादन कार्यवाहियां उस तारिख से 12 वर्ष के भीतर शरू कि जानी है जब आज्ञप्ति या आदेश प्रर्वतनिय हो जाता है और जहां आज्ञप्ति या कोई पश्चातवर्ती आदेश धन के किसी भुगतान या किसी निश्चित दिनांक पर यह आवर्ती अवधि पर किसी संपत्ति को प्रदान किया जाना जब प्रदान जिसके संबंध में निष्पादन मांगा गया है या भुगतान में चुक होती है ।

4. यह न्यायालय, दीपचंद बनाम मोहनलाल (2 न्यायाधीश) में अधिनियम के अनुच्छेद 136 की व्याख्या करते समय इस प्रभाव का प्रासंगिक अवलोकन व्यक्त करता है कि :

i. कोई आज्ञप्ति या आदेश उसकी तारीख से लागू हो जाता है ।

ii. उचित मामलों में आज्ञप्ति पारित करने वाला न्यायालय वह समय विहित कर सकता है जिसके बाद से आज्ञप्ति किसी भावी दिनांक से प्रवर्तनीय हो जाती है ।

iii. किसी निष्पादन कार्यवाही का उद्देश्य आज्ञप्ति धारक को अपनी आज्ञप्ति का फल प्राप्त करने में समर्थ बनाता है ।

iv. यदि आज्ञप्ति की भाषा दो निवर्चनों में सक्षम है, जिनमें से एक आज्ञप्ति धारक को आज्ञप्ति का फल प्राप्त करने में सहायता करता है और दुसरा आज्ञप्ति धारक को आज्ञप्ति का लाभ लेने से रोकता है तो ऐसे निवर्चन को स्वीकार किया जाना चाहिए जो आज्ञप्ति धारक को सहायता करता है ।

v. किसी आज्ञप्ति को तकनीकि आधार पर निरर्थक नहीं ठहराया जाना चाहिए । ऐसे मामलों में तर्क संगंत दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है जहां एक आज्ञप्ति लंबे समय तक मुकदमेंबाजी का विषय रही है और उसका निश्पक्ष निर्माण किया जाना चाहिए ।

5. अक्कनायकर बनाम ए.ए. कोत्वाडाईनायडु और अन्य में इस न्यायालय (2 न्यायाधीशों की पीठ) ने यह अभिनिधार्रित किया कि ''जब आज्ञप्ति या आदेश प्रवर्तनीय हो जाता है'' शब्दों के परिप्रेक्ष्य में अधिनियम के अनुच्छेद 136 में आने वाला, परिसीमा का प्रांरभिक बिंदु वह दिनांक होगी जिसको आज्ञप्ति निष्पादन के लिए सक्षम हो जाती है ।

6. इसके अतिरिक्त बिमल कुमार बनाम शंकुतला देवी के मामलें में इस न्यायालय (2 न्यायाधीश) ने यह अवलोकन किया :

> **41.** इस संदर्भ में, हम रतन सिंह बनाम विजय सिंह (2001) 1 एस.सी.सी. 469 का उल्लेख उपयोगी रूप से कर सकते है जिसमें एक आज्ञप्ति की प्रवर्तनियता की अवधारणा और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित एक स्थगन आदेश के प्रभाव पर विश्वास करते हुए, खंडपीठ ने इस तरह व्यक्त किया :
>
> **8.** कोई आज्ञप्ति कब प्रवर्तनीय हो जाती है ? सामान्य रूप से कोई आज्ञप्ति या आदेश उसकी दिनांक से प्रवर्तनीय हो जाता है । किंतु मामलें अज्ञात नहीं है जब आज्ञप्ति किसी भावी दिनांक को यह कुछ विनिर्दिष्ठ घटनाओं के घटित होने पर प्रवर्तनीय हो जाती है । 'प्रवर्तनीय' अभिव्यक्ति का प्रयोग ऐसी आज्ञप्तियों या आदेशों को शामिल करने के लिए भी किया गया है जो पश्चात्वर्ती प्रवर्तनीय हो जाते है ।
>
> (जोर दिया गया)

7. मामलें के तथ्यों पर ध्यान देने से पहले, दीवानी प्रथम अपील संख्या 11/1959 में समझौता आज्ञप्ति दिनांक 26.04.1960 के खंड 6 को पुनः प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण है :

> ''यह कि इस वाद के संस्थित होने के बाद और जिला न्यायाधीश के न्यायालय में मामलें के विचाराधीन रहने के दौरान, अपीलकर्ता ने भूमि के कुछ हिस्सें को सरकार को समर्पित करने की कार्यवाही शुरू की । किंतु इस भूमि के हिस्सें पर प्रतिवादीगण क्रमांक 1 से 4 का वास्तविक कब्जा है । प्रतिवादीगण क्रमांक 1 से 4 अपने अधिकार और कब्जा बनाये रखने के अधिकारी होगें जैसे कि पहले थे और सर्मपण की कार्यवाही को समाप्त करवाने के अधिकारी होगें और इसके लिए वे कानूनी कार्यवाही शुरू कर सकते हैं । अपीलकर्तागण अपने कथन आदि प्रस्तुत करते हुए अपनी जरूरत/आवश्यकता के अनुसार प्रतिवादी को सभी प्रकार की कानूनी कार्यवाहियों के समाप्त होने के बाद सहायता करेगें, यदि उक्त परिसर प्रतिवादी क्रमांक 1 से 4 के कब्जें से ले लिया जाता है, तो अपीलकर्ता नक्शें में इंगित वी बिंदुओं के पूर्व से अपनी भूमि से लगा हुआ 1 बीघा 5 बिस्वा बराबर 1 और 1/4 बीघा प्रतिवादी संख्या 1 से 4 को देगा । जहां से अपीलकर्तागण कभी भी ऐसे लेने की इच्छा

कर सकते है और उस स्थिति में प्रतिवादी संख्या 1 से 4 को उसे लेने का अधिकार होगा ।

8. समझौते की आज्ञप्ति के उपरोक्त खंड के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि वाद के विचाराधीन होने के दौरान, अपीलकर्ता ने भूमि राज्य सरकार को समर्पण कर दी । विशेष रूप से, यह समझौते की आज्ञप्ति दर्ज की गई थी जिसमें यह निर्दिष्ट किया गया था कि यदि ऐसे सर्मपण के कारण प्रतिवादीगण (डीक्री धारकों) को भूमि का कब्जा खोना है तो अपीलकर्ता (निर्णित ऋणी) पहले वालो को 1 बीघा और 5 बिस्वा देगा ।

9. वर्तमान अपील के तथ्यों से यह पता चलता है कि समझौते की आज्ञप्ति के निष्पादन का वाद हेतुक जब उत्पन्न होता है तब आज्ञप्ति धारकों (प्रतिवादीगण संख्या 1 से 4) के कब्जें से परिसर ले लिया गया । सिविल न्यायालय द्वारा वाद संख्या 30ए/87 में पारित अंतिम आज्ञप्ति के द्वारा प्रतिवादीगण को बेकब्जा किया जाने की पुष्टि हुई जब तीसरे व्यक्ति अर्थात श्री मलिक राम के पक्ष में अधिकार निर्धारित किये गये है । अतः हमारे सुविचारित मत में, वाद हेतुक केवल दिनांक 31.03.1994 को उत्पन्न होगा । खण्ड 6 के प्रर्वतनियता के लिए पहली शर्त प्रतिवादीयों को विधेन या तथ्यन बेदखल करना है ।

10. इसे एक अलग दृष्टिकोण से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि समझौते की आज्ञप्ति का खण्ड 6 तब तक निष्पादित नहीं किया जा सकता था जब तक कि आज्ञप्ति धारक अपने कब्जें के अधिकार को खो न दे, यह तथ्य तब तक संभव नहीं था जब तक कि ऐसे अधिकार सिविल न्यायालय द्वारा निर्णायक रूप से निर्धारित न किये जाएं ।

11. जैसा की उपर चर्चा की गई है, परिसीमा अवधि केवल आज्ञप्ति के प्रर्वतनीय होने के साथ शुरू होगी और इस प्रकार निष्पादित किये जाने में सक्षम है । वर्तमान मामलें में, वह सुसंगत दिनांक जिसके बाद से परिसीमा की अवधि केवल दिनांक 31.03.1994 से शुरू होगी । 12 वर्ष की अवधि की गणना उक्त दिनांक से की जायेगी, अतः दिनांक 17.07.1995 को किया हुआ निष्पादन आवेदन परिसीमा के भीतर है ।

12. यहां भी दर्ज किया जाता है कि इस अपील के लंबित रहने के दौरान, पक्षकारों को समझौते के लिए अवसर दिया गया । किंतु कोई समझौता नहीं हो सका ।

13. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह सुविचारित मत है कि अधिनस्थ न्यायालयों ने ठिक ही अभिनिर्धारित किया है कि निष्पादन आवेदन परिसीमा के भीतर है ।

14. इस अपील को निराकृत करने के पहले हम आज्ञप्ति धारकों के प्रस्तुतिकरण पर ध्यान देते है कि चेक लेने के बावजूद समझौता विफल होने के कारण प्रस्तुत नहीं किये गये । इस तरह के कथन को अभिलेख पर लिया जाता है ।

15. इस तरह यह अपील खारिज की जाती है । यदि कोई अंर्तवर्ती आवेदन हो तो निराकृत किया जाता है । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं ।

(कृष्ण मुरारी) न्यायमुर्ति

(संजय करोल) न्यायमुर्ति

दिनांक 17 अप्रैल, 2023

स्थान : नई दिल्ली

अस्वीकरण – स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक एवं कार्यालयीन प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा एवं निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ क्षेत्र धारित करेगा।